श्री आर्यभाषा-पुस्तकालय



कृपया—

१) मैले हाथों से पुस्तक को स्पर्श न कीजिए। जिल्द पर कागज चढ़ा लीजिए।

२) पन्ने सँभाल कर उलटिए। थूक का प्रयोग न कीजिए।

३) निशानी के लिये पन्ने न मोड़िए, न कोई मोटी चीज रखिए। कागज का टुकड़ा काफी है।

(४) हाशिया पर निशान न बनाइए, न कुछ लिखिए।

(५) खुली पुस्तक उलट कर न रखिए, न दोहरी करके पढ़िए।

(६) पुस्तक को समय पर अवश्य लौटा दीजिए।

५५२
प·०१

ग्रंथकार पन्नालाल बाकलीवाल दिगम्बर जैन

ग्रंथनाम कातन्त्र पंचसन्धि

आगमन क्रमांक २६१८ तिथि

सदस्य	लेने की तिथि	लौटाने की तिथि	सदस्य	लेने की तिथि	लौटने की तिथि
	१९	१९		१९	१९

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

२६१८ सार्थ

कातन्त्रपञ्चसन्धिः

अर्थात्

बालबोधपञ्चसन्धिः

जिसको

सर्व साधारण विद्यार्थीयोंके हितार्थ सुजानगढ

जिले बीकानेर–निवासी पन्नालाल

बाकलीवाल दिगम्बरी जैनने

अनुवादित किया और

पण्डित श्रीधर शिवलालजीने

अपने

ज्ञानसागर प्रेसमें छापकर

प्रसिद्ध किया.

प्रथमावृत्तिः

सन १८९९ ईस्वी.

इस पुस्तकके छपाने आदिका हक़ ऑक्ट २५ सन १८६७ के
अनुसार यंत्राधीशने स्वाधीन रखा है.

भूमिका.

विदित हो कि प्राचीन समयमें इन्द्र, चन्द्र कार्त्सकृष्ण पिशली, शाकटायन, पाणिनीय, अमर और जैनेन्द्र ये ८ व्याकरण मुख्य और प्रसिद्ध गिननेमें आते थे. परन्तु **कातंत्रव्याकरण** जिसको कलाप, कौमार और बालबोधभी कहते हैं. इन सबसे प्राचीन गिना जाता हैं; क्योंकि इसकी प्राचीनतामें प्रथम प्रमाण तो यह देखनेमें आया कि एक बंगाली विद्वान् महाशयने इतिहासोंसे सिद्ध किया है कि शालिवाहन राजा (जिसका की शाके नामका सम्वत्सर चलता है) की बुद्धि अतिशय कुण्ठित होनेके कारण—श्रीमच्छर्ववर्म्माचार्य्यनें खास महाराजाको पढानेके लिये इसको बनाया था. इसी कारणसे यह व्याकरण सरलतामें अद्वितीय है. दूसरे प्राचीन कालके अनेक आचार्य्योंने इस व्याकरणपर अनेक प्रकारकी टीकायें रचकर इसके पठन पाठनकी विशेषतया प्रवृत्ति चलाई थी. उन प्राचीन टीकाओंमेंसे ११ टीकायें तो पूना शहरके प्रसिद्ध दक्षिण कोलेजकी लाइब्रेरीमें ह स्त लिखित मौजूद हैं. इसके अतिरिक्त संस्कृत विद्याके

पारगामी अनेक वंगदेशीय विद्वानोंने इसकी परम उपयोगिता समझ अपने देशमें यथार्थ प्रचारही नहि किया किन्तु प्राचीन टीकाओंकी अनुपलब्धिके कारण नवीन संस्कृत वंगला टीकायें रचकर व परिशिष्ट सूत्रोंका पता लगाकर संपूर्णतया सांगोपांग करके इसका विशेष समादर किया और अनेक प्रकारसे लाभ उठाकर अपनी प्रकृत विद्वत्ताका परिचय दिया है.

यद्यपि हमारे पश्चिमोत्तर प्रदेश व राजपूताने आदि देशोंमेंभी इसका पूर्णतया प्रचार रहा, परन्तु जबसे संस्कृत विद्याकी हीनता हुई और छपनेके कारण सारस्वत कौमुदीका प्रचार हुवा तबसे इस व्याकरणके पठन पाठनका प्रचार बहुधा लोप होगया, तौ भी वर्त्तमान समयमें हजारों जगह इस व्याकरणकी पंचसन्धि सीधो, समान, ओदन्ता, वर्गा, विसूर इन नामोंसे अपभ्रंशरूप मूलसूत्र पाठमात्र पढाये जाते हैं जिससे सिवाय हानिके संस्कृत विद्याका व सर्वगुण आगरी देवनागरी भाषा का कुछभी उपकार नहि सधता. ऐसी दुर्दशा देख जगत्प्रसिद्ध चण्डुपञ्चांग के प्रकाशक श्रीयुत पण्डितवर्य्य श्रीधर शिवलालजी ज्ञानसागर प्रेशाधीशने विचार किया कि यदि सर्व प्रकारसे परम उपयोगी इस प्राचीन आर्ष व्याकरणकी

वृत्ति हो जाय तो संस्कृत विद्याके अध्ययनकी अतिशय कठिनताका नाश हो सहजहीमें हमारे भारतवर्षीय भ्रातृगण संस्कृत विद्याको पठन पाठनकर उन्नतिकर सक्ते हैं. जिससे देशकाभी बहुत कुछ हितसाधन हो सक्ता है. इस अभिप्रायसे इस व्याकरणको सरल हिन्दी भाषा टीका सहित प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रगट कर मुझे बाधित किया कि तुम इस व्याकरणके कई भाग करकें सरल हिन्दी भाषानुवाद सहित लिखदो. अत एव मैनें उक्त महाशयकी आज्ञा शिरोधारणकर इस व्याकरणका सरल हिन्दी भाषानुबाद करके उसमेंसे नमूना स्वरूप यह कातंत्रपञ्चसन्धि प्रकरण प्रथमखण्ड मात्र संस्कृत तथा हिन्दीपाठशालाओंके अध्यापक व प्रबंधकर्ताओं की सेवामें उपस्थित कियाहै. आशा हैं कि इसको पाठशालाओंमें भरतीकर मेरे व प्रकाशक महाशयके परिश्रमको सफलीभूत करेंगे. यदि इससे विद्यार्थियोंका विशेष हितसाधन होगा तो षड्लिङ्गादि अन्यान्य भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित किये जांयगे.

मुंबई.
ता. ११ जनवरी.
सन १८९९ ईस्वी.

सबका हितैषी
पन्नालाल बा० दि० जैन.



॥ श्रीवीतरागायनमः ॥

सार्थ-
कातंत्रपञ्चसन्धिः

(अर्थात्)

बालबोधपंचसन्धिः

—:०:—

दोहा

देव शास्त्र गुरु धर्म प्रति, नमन-क्रिया करसार ॥
बालबोध सन्धी विषय, लिखूं सकल हितकार ॥१॥

सिद्धो वर्णसमाम्नायः ॥ १ ॥

अर्थः—(वर्णसमाम्नायः) अक्षरोंका समुदाय अथवा पाठक्रम जो है सो (सिद्धः) स्वयं सिद्ध है. अर्थात् *अनादिकालसे प्रसिद्ध है. जैसें—अआ इई उऊ*

ऋॠ ऌॡ ए ऐ ओ औ। कखगघङ चछजझञ टठडढ ण तथदधन पफबभम यरलव शषसह ।

तत्र चतुर्दशादौ स्वराः ॥ २ ॥

अर्थः—(तत्र) तिस वर्णसमुदायमें (आदौ) पहिलेके (चतुर्दश) चौदह अक्षर हैं ते (स्वराः) स्वर[१] हैं. जैसें, अआ इई उऊ ऋॠ ऌॡ ए ऐ ओ औ.

दश समानाः ॥ ३ ॥

अर्थः—अक्षरोंकी समुदायमें से पहिलेके (दश) दश अक्षर हैं ते (समानाः) समान हैं. अर्थात् इनका नाम समान स्वर हैं. जैसें,—अआ इई उऊ ऋॠ ऌॡ.

तेषां द्वौद्वावन्योऽन्यस्य सवर्णौ ॥ ४ ॥

अर्थः—(तेषां) उन समान स्वरोंके (द्वौ द्वौ)

(१) जो अन्य अक्षरकी सहायताकेविना अपने आप उच्चारण करनेमें आजाय उनको स्वर कहते हैं.

दो दो अक्षर (अन्यः अन्यस्य) एक दूसरेका (सवर्णौ) सवर्ण यानि सजातीय हैं. जैसें—

अआ ये दोनों वर्ण आपसमें सवर्णी हैं।
इ ई ये दोनों वर्ण आपसमें सवर्णी हैं।
उ ऊ ये दोनों वर्ण आपसमें सवर्णी हैं।
ऋॠ ये दोनों वर्ण आपसमें सवर्णी हैं।
ऌॡ ये दोनों बर्ण आपसमें सवर्णी हैं।

पूर्वोऽह्रस्वः ॥ ५ ॥

अर्थ—इन दो दो वर्णोंमेंसे (पूर्वः) पहिला अक्षर (ह्रस्वः) ह्रस्व है. जैसै,— अ इ उ ऋ ऌ।

परोदीर्घः ॥ ६ ॥

अर्थः—इन दो दो वर्णोंमेंसे (परः) अगला अक्षर (दीर्घः) दीर्घ है. जैसें—आ ई ऊ ॠ ॡ।

स्वरोऽवर्णवर्जो नामी ॥ ७ ॥

अर्थः—(अवर्णवर्जः) अ आ को छोड कर

(स्वरः) स्वर जो है सो(नामी)नामी कहलाता है जैसें, इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ औ औ । कहीं २ पर अवर्ण कहाजाय तो अआ दो अक्षर समझने चाहिये. इसी प्रकार इवर्णसे ईई, उवर्णसे उऊ, ऋवर्णसे ऋॠ, ऌवर्णसे ऌॡ समझना चाहिये.

एकरादीनि सन्ध्यक्षराणि ॥ ८ ॥

अर्थः—(एकारादीनि) एकारको आदि ले अर्थात् ए ऐ ओ औ ये ४ अक्षर (सन्ध्यक्षराणि) सन्ध्यक्षर[1] कहे जाते हैं. इसी कारण ये सबके सब दीर्घ हैं.

कादीनि व्यञ्जनानि ॥ ९ ॥

अर्थः—(कादीनि) क से लेकर ह पर्यन्त जे अक्षर हैं ते (व्यञ्जनानि) व्यञ्जन[2] कहलाते हैं जैसे,—

---

(१) सन्धिसे बनेहुये जैसे, अ+इ=ए । अ+ए=ऐ । अ+उ=ओ । अ+ओ=औ । (२) जिनका उच्चारण स्वरके सहारेसे होय वे अक्षर व्यंजन कहलाते हैं ।

कखगघङ. चछजझञ. टठडढण. तथदधन. पफबभम. यरलव शषसह. इन सब व्यञ्जनोंमें बोलनेके लिये प्रत्येक अक्षरमें एक एक (अ) मिला हुवा है. जिस समय इनमें अ अथवा और कोई भी स्वर नहि रहता है तो ये स्पष्टता से बोलनेमें नहिं आ शक्ते और २१ वें सूत्रके अनुसार अगले अक्षर में मिल जाते हैं. जब व्यञ्जनोंमें मिलते हैं तो उन मिले हुये व्यञ्जनोंको **संयुक्ताक्षर वा संयोगी अक्षर** कहते हैं और वे स्वर रहित शुद्ध व्यञ्जन इस प्रकार लिखे जाते हैं—

क्ख्ग्घ्ङ् च्छ्ज्झ्ञ् ट्ठ्ड्ढ्ण् त्थ्द्ध्न् प्फ्ब्भ्म् य्र्ल्व् श्ष्स्ह्

ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च ॥ १० ॥

अर्थः—(ते)वे ककारादि अक्षर क से म पर्यन्त (पञ्च पञ्च) पांच २ अक्षर मिलकर (पञ्च) पाचों ही (वर्गाः) वर्गसंज्ञावाले हैं, जैसें—

कखगघङ ये पांच अक्षर कवर्ग कहलाते हैं,

चछजझञ ये पांच अक्षर चवर्ग कहलाते हैं.

टठडढण ये पांच अक्षर टवर्ग कहलाते हैं.
तथदधन ये पांच अक्षर तवर्ग कहलाते हैं.
पफबभम ये पांच अक्षर पवर्ग कहलाते हैं.

वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः ॥ ११ ॥

अर्थः—(वर्गाणां) वर्गोंके (प्रथमद्वितीयाः) पहिले और दूसरे अक्षर (शषसाः च) और श ष स (अघोषाः) अघोषसंज्ञावाले हैं. जैसें,—कख चछ टठ तथ पफ शषस ये १३ अक्षर अघोष कहलाते हैं.

घोषवन्तोऽन्ये ॥ १२ ॥

अर्थः—(अन्ये) बाकीके बचे हुये जे बीस अक्षर हैं ते (घोषवन्तः) घोषवत् कहलाते हैं जैसें,—गघङ जझञ डढण दधन बभम यरलव ह ।

अनुनाशिका ङञणनमाः ॥ १३ ॥

अर्थः—(ङञणनमाः) ङञणनम ये पांच अक्षर (अनुनाशिकाः) अनुनाशिक कहलाते हैं ।

अन्तःस्था यरलवाः ॥ १४ ॥

अर्थः—(यरलवाः) यरलव ये ४ अक्षर (अन्तःस्थाः) अन्तःस्थ कहलाते हैं।

ऊष्माणः शषसहाः ॥ १५ ॥

अर्थः—(शषसहाः) श ष स ह ये ४ अक्षर (ऊष्माणः) ऊष्म कहलाते हैं।

अः इति विसर्जनीयः ॥ १६ ॥

अर्थः—(अः इति) अकारके आगे जो दो बिन्दु हैं वह (विसर्जनीयः) विसर्ग है. यह विसर्ग व्यञ्जनहै. इस कारण इसका उच्चारण करनेके लिये अकार स्वर लगाया गया है।

× क इति जिह्वामूलीयः ॥ १७ ॥

अर्थः—(× क इति) कख से पहिले जो × ऐसा अथवा ५ ऐसा चिन्ह होता है वह (जिह्वामूलीयः) जिह्वामूलीय अक्षर कहलाता है. यह भी

व्यञ्जन है, इसमें 'क' उदाहरणको उच्चारणकरनेके लिये लगाया गया है।

पँ इत्युपध्मानीयः ॥ १८ ॥

अर्थः—(पँ इति) प और फके उपरि (᷍) इस प्रकारकी गजकुम्भाकृति अथवा पफसे पहिले ᷍ अथवा ᷎ ऐसा चिन्ह होता है, वह (उपध्मानीयः) उपध्मानीय अक्षर कहलाता है. यह भी व्यञ्जन है, इसमें प उच्चारणके लिये लगाया गया है।

अं इत्यनुस्वारः ॥ १९ ॥

अर्थः—[अं इति] किसी अक्षरके मस्तक पर [ं] ऐसा बिन्दु होता है वह [अनुस्वारः] अनुस्वार कहलाता है. यह भी व्यञ्जन है, स्वरके सहारेसे बोलनेमें आता है, इसी कारण इस सूत्रमें अकार उच्चारणके लिये लगाया गया है।

पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम् ॥ २० ॥

अर्थः—(पूर्वपरयोः) पूर्व जे प्रकृति अर्थात् शब्द और धातु, पर जो सि आदि और ति आदि विभक्तियें इन दोनोंका संयोग होनेसे (अर्थोपलब्धौ) अर्थकी प्राप्ति होयतो वह (पदम्) पद कहलाता है. अर्थात् शब्द और धातुओंके आगे विभक्तियें जुड जाने से पद कहलाता है. विना विभक्तिके जुडे प्रकृति कहलाते हैं. अथवा शब्द और धातु कहलाते हैं.

व्यञ्जनमस्वरं परवर्ण नयेत् ॥ २१ ॥

अर्थः—(अस्वरं) स्वर रहित (व्यञ्जनं) व्यञ्जन

(१) राम. देव, पुरुष, हरि भानु, इत्यादि शब्द हैं और भू कृ अस् एध् इत्यादि धातु हैं. इनको संस्कृतमें प्रकृति कहते हैं. सो शब्दोंके आगें तो सि, औ, जस् इत्यादि २१ विभक्तियें आनेसे हरएक शब्दके २१ पद बनजाते हैं, तबही इनका २१ प्रकार का अर्थ होता है. और धातुओंके आगें ति तस् अन्ति इत्यादि ९० तथा किसी २ के आगें १८० विभक्तियें आनेसे ९० तथा १८० पद (क्रियापद) बनजाते हैं. तबही उनका अर्थ होता है।

जो है सो (परवर्ण) अगले अक्षरमें (नयेत्) जोड देवै. जैसें—

स् + त् + र् + ई = स्त्री ।

म् + अ + त् + स् + य् + अः = मत्स्यः ।

क् + ल् + आ + न् + त् + इः = क्लान्तिः ।

श् + र् + ई + क् + ऋ + ष् + ण् + अः = श्रीकृष्णः ।

अनतिक्रमयन् विश्लेषयेत् ॥ २२ ॥

अर्थः—मिले हुये अक्षरोंको (अनतिक्रमयन्) क्रमसे (विश्लेषयेत्) जुदा जुदा करै । इसीको विश्लेष्य कहते हैं । जैसै—

व्याख्या = व् + य् + आ + ख् + य् + आ ।

शम्भूः = श् + अ + म् + भ् + ऊः ।

गुर्वोः = ग् + उ + र् + व् + ओः ।

क्लान्तिः = क् + ल् + आ + न् + त् + इः ।

लोकोपचारादग्रहणसिद्धिः ॥ २३ ॥

अर्थः—(ग्रहणसिद्धिः) आगेके अनेक सूत्रोंमें लोप, निपात, अव्यय, उपसर्ग, कारक आदि संज्ञायें, तथा अक्षर, पद, जो ग्रहण किये जांयगे; उनकी सिद्धि कहिये प्रवृत्ति (लोकोपचारात्) लोकव्यवहारसेही जाननी, क्योंकि ये सब सर्व साधारणमें व्यवहार होनेसे प्रसिद्धहैं. इस कारण इनकी संज्ञा करनेके लिये आचार्य्यने कोई विशेष सूत्र नहि बनाये।

इति प्रथमसन्धिः।

अथ स्वरसन्धिः।

समानः सवर्णे दीर्घी भवति परश्च लोपम् ।२४

अर्थः(सवर्णे) सवर्णके परे रहते (समानः) समानस्वर जो है सो (दीर्घी) दीर्घ (भवति) होताहै (च) और (परः)पर अक्षर जो सवर्ण है, वह (लोपम्) लोपको प्राप्त हो जाता हैं. जहां पहिला समान स्वर दीर्घही होय, वहां फक्त परका लोपकर देना

चाहिये। क्योंकि दीर्घका दीर्घ नहि होता ह्रस्वका ही दीर्घ होताहै। जैसें,—

भव + अब्धिः = भवाब्धिः।
शिव + आलयः = शिवालयः।
कान्ता+ अस्ति = कान्तास्ति।
महा + आत्मा = महात्मा।
मुनि + इन्द्रः = मुनीन्द्रः।
यति + ईशाः = यतीशाः।
मही + इन्द्रः = महीन्द्रः।
साधु + उत्तमः = साधूत्तमः।
वायु + ऊर्म्मिः = वायूर्म्मिः = वायूर्मिः
वधू + उत्तमः = वधूत्तमः।
वधू + ऊढा = वधूढा।
मातृ + ऋणम् = मातॄणम्।
मातृ + ऋकारेण = मातॄकारेण।
कृ + ऋकारः = कॄकारः।

कृ + ऋकारेण= कृकारेण ।

अवर्णे इवर्णे ए ॥ २५ ॥

अर्थः—(इवर्णे) इ ई के परे रहते (अवर्णः) अ आ जो है सो (ए) ए होजाता है और परका लोप होजाताहै. जैसें,—देव+इन्द्रः=देवेन्द्रः । गण+ईशः=गणेशः । महा+इन्द्रः=महेन्द्रः । महा+ईशः=महेशः इत्यादि. चौवीसवें सूत्रमें चकार ग्रहण अनुक्तसमुच्चयार्थ होनेसे कहीं२ अकारका व मनस् शब्दके अस् भागका लोप होजाताहै. जैसें,—हल+ईषा=हलीषा। लाङ्गल+ईषा=लाङ्गलीषा । मनस्+ईषा=मनीषा

उवर्णे ओ ॥ २६ ॥

अर्थः—(उवर्णे) उऊ के परे रहते अआ (ओ) ओ होजाता है और परका लोप होजाता है. जैसें,—हित+उपदेशः=हितोपदेशः । नव+ऊढा=नवोढा । महा+उत्सवः=महोत्सवः । माला+ऊढा=मालोढा ।

ऋवर्णे अर् ॥ २७ ॥

अर्थः—(ऋवर्णे) ऋऋ के परें रहते अआ (अर्) अर् होजाताहै और परका लोप होजाताहै जैसें,—शीत+ऋतु=शीतर्तुः । महा+ऋषिः=महार्षिः । परन्तु २४ वें सूत्रमें चकारका ग्रहण अनुक्त समुच्चयार्थ होनेसे ऋण शब्दके परें रहते ऋण, प्र, वसन, वत्सतर कम्बल, दश, इन शब्दोंके अकारको आर् होताहै जैसें,—ऋण + ऋणम् = ऋणार्णम् । प्र+ऋणम्=प्रार्णम् । वसन+ऋणम्=वसनार्णम् । वत्सतर+ऋणम्+वत्सतरार्णम् । कम्बल+ऋणम्= कम्बलार्णम् । दश + ऋणम् = दशार्णम् ।

ऌवर्णे अल् ॥ २८ ॥

अर्थः—(ऌवर्णे) ऌऌ के परें रहते अआ (अल्) अल् होजाता है. और परका लोप होजाता है जैसें तव+ऌकारः=तवल्कारः । सा+ऌकारेण=। सल्कारेण

एकारे ऐ ऐकारे च ॥ २९ ॥

अर्थः-(एकारे) एकार (च ऐकारे) और ए-कारके परें रहते, अआ (ऐ) ऐ हो जाता हैऔर प-रका लोप होजाता है । जैसें,-तव+एषा=तवैषा । मम +ऐश्वर्य्यम्=ममैश्वर्य्यम् । सदा+एव=सदैव । महा+ऐ-श्वर्य्यम्=महैश्वर्य्यम् । चकारके ग्रहण करनेसे कहीं २ अ का लोप भी होजाता है. जैसें,-प्र+एलयति=प्रेल-यति । अद्य+एव=अद्येव । इह+एव=इहेव इत्यादिः ।

ओकारे औ औकारे च ॥ ३० ॥

अर्थ-(ओकारे) ओकार (च) और (औकारे) औकारके परें रहतें अ आ जो है सो (औ) औ हो जाता है और परका लोप होजाता है. जैसें,-तव+ओ-दनम्=तवौदनम् । भव+औषधम्=भवौषधम् । महा + ओषधी=महौषधी।महा+औषधम्=महौषधम् । चकार-के ग्रहणसे कहीं २ अवर्णका लोप भी होजाता है किन्तु ओम् के परें होते नित्यलोप होताहै जैसें--परा+

ओखति=परोखति । प्र+ओषधीयति=प्रोषधीयति । बिम्ब+ओष्ठः = बिम्बोष्ठः । स्थूल+ओतुः=स्थूलोतुः । अद्य+ओम=अद्योम् । सा+ओम=सोम् इत्यादि ।

इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः ॥ ३१ ॥

अर्थः—(असवर्णे) असवर्ण स्वरके परे रहते (इवर्णः) इ ई (यम्) य् को प्राप्त होजाय (च) और (परः)पर स्वर जो है सो (लोप्यः नः) लोपकरना नहि चाहिये । जैसे—यदि+अपि=यद्यपि । इति+आदिः =इत्यादिः । जातिः+उन्नतिः=जात्युन्नतिः । नदी+एव=नद्येव । देवी+आगता=देव्यागता । इत्यादि ।

वमुवर्णः ॥ ३२ ॥

अर्थ—असवर्ण स्वरके परे रहते (उवर्णः) उ ऊ (वम्) व् कोप्राप्त होजाय और पर स्वरका लोप नहि होय । जैसे,--मधु+अत्र=मध्वत्र । मधु+आनय=मध्वानय । वधू+आसनम्=वध्वासनम् । वधू+ऋतम वध्वृतम् इत्यादि ।

रमृवर्णः ॥ ३३ ॥

अर्थ–असवर्ण स्वरके परें रहते (ऋवर्णः) ऋ ॠ (रम्) र् को प्राप्त होजाय. और परस्वरका लोप नहि होय जैसे–पितृ+अर्थः=पित्रर्थः । पितृ+आलयः =पित्रालयः । भ्रातृ+उदयः=भ्रात्रुदयः इत्यादि ।

लम्ऌवर्णः ॥ ३४ ॥

अर्थ–असवर्ण स्वरके परें रहते (ऌवर्णः) ऌ ॡ (लम्) ल् को प्राप्त होजाता है और परस्वरका लोप नहि होता जैसे--ऌ+अनुबन्धः=लनुबन्धः । ॡ+आकृतिः=लाकृतिः । गम्ऌ+औगतौ=गम्लौगतौ इत्यादि ।

ए अय् ॥ ३५

अर्थ–किसी भी स्वरके परें रहते (ए) ए जो है सो (अय्) अय् होजाता है और परस्वरका लोप नहि होता. जैसे,--ने+अनम्=नयनम् । चे+अनम्=चयनम् ।

ऐ आय् ॥ ३६ ॥

अर्थ–किसी भी स्वरके परें रहते (ऐ) ऐ जो है

सो (आय्) आय् होजाता है और परस्वरका लोप नहि होता. जैसे,--नै+अकः=नायकः । चै+अकः= चायकः इत्यादिः ।

ओ अव् ॥ ३७ ॥

अर्थ--किसी भी स्वरके परे रहते (ओ) ओ जो है सो (अव्) अव् होजाता है और परस्वरका लोप नहि होता. जैसे,--लो+अनम्=लवनम् । पो+अनम्=पव-नम् इत्यादिः ।

औ आव् ॥ ३८ ॥

अर्थ--किसी भी स्वरके परे रहते (औ) औ जो है सो (आव्) आव् हो जाताहै और परस्वरका लोप नहि होता जैसे,--लौ+अकः=लावकः । पौ+अकः= पावकः इत्यादिः ।

गोशब्दके आगे स्वर आनेसे कहीं २ सन्धी नहि होती. तथा कहीं अव् का जग अव होता है परन्तु अक्ष और इन्द्रशब्दके परे रहनेसे अव हीं होता

है जैसे,—गो+अजिनम्=गो अजिनम्=गवाजिननम्। गो+अश्वौ=गो अश्वौ=गवाश्वौ। गो+अक्षः=गवाक्षः। गो+इन्द्रः=गवेन्द्रः।

अयादीनां यवलोपः पदान्ते न वा लोपे तु प्रकृतिः ॥ ३९ ॥

अर्थ—(पदान्ते) पदान्तमें (अयादीनां) अय् आय् अव् आव् के (यवलोपः) य् व् का (नवा) कहीं २ लोप होजाता है. और (लोपे तु) यकार वकारके लोप होने पर फिर वहां (प्रकृतिः) जैसा-का तैसा रहता है. अर्थात् वहां पर फिर कोई सन्धि नहि होसक्ती जैसे—ते+आहुः=तय्+आहुः=त आहुः। तस्मै+आसनम्=तस्माय्+आसनम्=तस्मा आसनम्। पटो+इह=पटव्+इह पट=इह। असौ+इन्दुः=असाव्+इन्दुः=असा इन्दुः इत्यादिः।

एदोत्परः पदान्ते लोपमकारः ॥ ४० ॥

अर्थ—(पदान्ते) पदान्तमें (एदोत्परः) ए और

ओ सेपरेका (अकारः) अकार जो है सो (लोपम्) लोपको प्राप्त होजाय और लोपहुये अकारको कोई कोई (ऽ)इस चिन्हसे प्रगट करते हैं जैसे--मुने+अव=मुनेव=मुनेऽव। गुरो+अव=गुरोव=गुरोऽव। ते+अत्र=तेत्र=तेऽत्र। पटो+अत्र=पटोत्र=पटोऽत्र। इत्यादि।

न व्यञ्जने स्वराः सन्धेयाः ॥ ४१ ॥

अर्थ--(व्यञ्जने) व्यञ्जन अक्षर के परे रहते (स्वराः) स्वर जे हैं ते (सन्धेयाः) सन्धिकरने योग्य (न) नहीहैं। जैसे,—देवी गृहम्। पटु हस्तम् इत्यादिः। परन्तु तद्धितका य परे आताहै तो ऋ को र् और रास्ते के नाप अर्थमें गो शब्दसे आगे यूतिः शब्द आता है तो ओ को अव् होजाताहै. जैसे,--पितृ+यम्=पित्र्यम्। भ्रातृ+यम्=भ्रात्र्यम्। मातृ+यम्=मात्र्यम्। गो+यूतिः=गव्यूतिः [दो कोश] इत्यादि।

इति द्वितीय सन्धिः।

अथ प्रकृति सन्धिः ।

ओदन्ता अ इ उ आ निपाताः स्वरे प्रकृत्या ॥४२॥

अर्थ- (स्वरे) स्वरके परे रहते (ओदन्ताः) ओ जिनके अन्तमें हो ऐसे निपात और (अ इ उ आ निपाताः) अ इ उ आ ये ४ निपात हैं ते (प्रकृत्या) प्रकृतिसे रहैं अर्थात् इनकी सन्धि नहि होय । जो शब्द अनादिसे चले आते हैं व्याकरणके किसी सूत्रसे भी सिद्ध नहि होते, उनको संस्कृत व्याकरण बनानेवाले निपात कहते हैं । (ओदन्ताः) इस पदमें अन्त पदका ग्रहण करनेसे अ इ उ आ ये ४ निपातस्वर अकेले ही समझने--किसी शब्द में मिले हुये नहि लेने और आ भी आङ् उपसर्गका नहि लेना जैसे,—नो अत्र--अहो आश्चर्य्यम् । अथो एवम् । अ अपेहि । इ इन्द्रं पश्य । उ उत्तिष्ठ । आ एवं किल मन्यसे ? । आ एवं नु तत् । इत्यादि में सन्धि नहि होती ।

द्विवचनमनौ ॥ ४३ ॥

अर्थ-(अनौ) औ रहित (द्विवचनं) द्विवचनभी स्वरके परें रहते प्रकृतिसे रहताहै. अर्थात् द्विवचन पदके ई ऊ ए की सन्धि नहि होती. परन्तु 'अमुक'शब्दके द्विबचनकी सन्धि होजाय जैसे,-मुनी आगतौ । साधू आगतौ । यती आगच्छतः । बालिके आगच्छतः । माले इमे । इन पदोंमें संन्धि नहि हुई । अमुके+अत्र=अमुकेऽत्र ।

बहुवचनममी ॥ ४४ ॥

अर्थ-(बहुवचनम्) बहुवचनरूपजो (अमी)अमी पद है उसकी भी स्वरके परें रहते सन्धि नहि हो ती जैसेः,अमी अश्वाः।अमी एडकाः।अमी उष्ट्राः।इत्यादि।

अनुपदिष्टाश्च ॥ ४५ ॥

अर्थ-(अनुपदिष्टाः) वर्ण समाम्नायमें नहिबताये हुये ऐसे जे प्लुतस्वर हैं वे (च) भी स्वरके परें रहते सन्धिको प्राप्त नहि होते । प्लुतस्वर, गाने रोने चिल्ला-

ने तथा दूरसे किसीको बुलाने आदिमें ही आते हैं. क्योंकि प्लुतस्वरोंके उच्चारण करनेका समय दीर्घस्वरसे भी अधिक होता है। प्लुतस्वरोंको ३ का अङ्क लिख कर प्रकाश करते हैं जैसें,—आगच्छ भो देवदत्त३ अत्र। तिष्ठ भो यज्ञदत्त३ इह। इत्यादि। परन्तु चकार के ग्रहण करनेसे कहीं २ सन्धि हो भी जाती है जैसें,—सुश्लोक ३ इति=सुश्लोकेति।

इति तृतीयसन्धिः

अथ व्यञ्जनसन्धिः।

वर्गप्रथमाः पदान्ताः स्वरघोषवत्सु तृतीयान्॥४६॥

अर्थ—(स्वरघोषवत्सु) चौदहस्वर और २० घोषवत् व्यञ्जनोंमेंसे किसी अक्षरके परे रहते (पदान्ताः) पदान्तमें रहनेवाले (वर्गप्रथमाः) वर्गोंके प्रथम अक्षर क् च् ट् त् प् (तृतीयान्) उसीवर्गके तृतीय अक्षरोंको प्राप्तहो जाय जैसेः—वाक्+अत्र=वा-

गत्र । वाक्+जयति=वाग्जयति । अच्+अत्र=अजत्र । अच्+गच्छति=अज्गच्छति । षट्+अत्र=षडत्र । षट्+गच्छन्ति=षड्गच्छन्ति । तत्+अत्र=तदत्र । तत्+गच्छति=तद्गच्छति । ककुप्+आस्ते=ककुबास्ते । ककुप्+जयति=ककुब्जयति इत्यादिः ।

पञ्चमे पञ्चमान्तृतीयान्नवा ॥ ४७ ॥

अर्थः--(पञ्चमे) वर्गोंके पञ्चम अक्षर परें रहनेसे वर्गोंके प्रथम अक्षर विकल्पसे (पञ्चमान्) उसी वर्गके पञ्चमअक्षरोंको प्राप्त हो जाते हैं (वा) कहीं २ (तृतीयान्) तीसरे अक्षरोंको भी (न) प्राप्त नहि होय.अर्थात् प्रत्ययका पञ्चम अक्षर परें रहते नित्य पञ्चम अक्षर होय. जैसेः—

वाक्+मती=वाङ्मती=वाग्मती ।
अच्+मात्रम्=अञ्मात्रम्=अज्मात्रम् ।
षट्+मुखानि=षण्मुखानि=षड्मुखानि ।
तत्+नयनम्=तन्नयनम्=तद्नयनम् ।

त्रिष्टुप्+मिनोति=त्रिष्टुम्मिनोति=त्रिष्टुब्मिनोति ।

प्रत्ययका पञ्चमअक्षर परें रहैते जैसे,—

वाक् + मात्रम्=वाङ्मात्रम् । अच् + मात्रम्=अञ्मात्रम् । षट्+मात्रम्=षण्मात्रम् । तत्+मयम्=तन्मयम् । ककुप्+मात्रम्=ककुम्मात्रम् इत्यादि ।

वर्गप्रथमेभ्यः शकारःस्वरयवरपरश्छकारम् ॥४८॥

अर्थः—पदान्तमें (वर्गप्रथमेभ्यः) वर्गोंके प्रथम अक्षरोंसे परें रहनेवाला (शकारः) शकार (नवा) कहीं २ (छकारम्) छकारको प्राप्त होजाता है. परन्तु शकार कैसा हो कि (स्वरयवरपरः) स्वर अथवा य व र इनमेंसे कोई अक्षर परें होय तथा किन्हीं २ आचार्योंने ल और ङ ञ ण न म इन अक्षरोंके परें रहते भी शकारको छकार होना कहा है. जैसे,— वाक्+शूरः=वाक् छूरः=वाक् शूरः । अच्+शेषः=अच्छेषः=अच्शेषः । षट्+श्यामाः=षट्छ्यामाः=षट्श्यामाः । तत्+श्वेतम् तच्छ्वेतम्=तच्श्वेतम् । त्रिष्टुप्

+श्रुतम्= त्रिष्टुप् त्रिष्टुप्श्रुतम् =तत्+श्लक्षणम् =त-च्छ्लक्षणम्=तच्श्लक्षणम्। तत्+श्मशानम्=तच्छ्म-शानम्=तच्श्मशानम् इत्यादि। इन रूपोंमें त् को च् ५०—५१—५४ वें सूत्रोंके लगनेसे होगया है॥

तेभ्य एव हकारः पूर्वचतुर्थं नवा ॥ ४९ ॥

अर्थः—(तेभ्यः एव) उन्ही वर्गके प्रथम अक्षरोंसे परेका (हकारः) हकार जो है सो (नवा) कहीं २ (पूर्वचतुर्थं) पहिले अक्षरवाले वर्गका चोथा अक्षर अर्थात् घ झ ढ ध भ होजाता है फिर ४६ वें सूत्रसे पहिले अक्षरोंको तृतीय अक्षर होजाते हैं जैसेः—

वाक्+हीनः=वाग्घीनः=वाग्हीनः।

तत्+हितम्=तद्धितम्=तद्हितम्।

ककुप्+हासः=ककुब्भासः=ककुब्हासः। इत्यादि।

परूपं तकारो लचटवर्गेषु ॥ ५० ॥

अर्थः—(लचटवर्गेषु) ल और चवर्ग टवर्गके परे रहते (तकारः) पदान्तका तकार (परूपं)

अगले अक्षरके रूपको प्राप्त होजाता है. जैसेः—तत्+लुनाति=तल्लुनाति । तत्+चरति=तच्चरति । तत्+छादयति । तच्छादयति । तत्+जयति=तज्जयति । तत्+झषयति=तज्झषयति । तत्+ञकारेण=तञ्ञकारेण । तत्+टीकते=तट्टीकते । तत्+ठकारेण=तठ्ठकारेण । तत्+डीनम्=तड्डीनम् । तत्+ढौकते=तढ्ढौकते । तत्+णकारेण=तण्णकारेण इत्यादि ।

चं शे ॥ ५१ ॥

अर्थः—पदान्तका तकार जो है सो (शे) शकारके परे रहते (चं) चकारको प्राप्त होजाय जैसेः—तत्+श्लक्षणम् = तच्श्लक्षणम् । तत्+श्मशानम् = तच्श्मशानम् । तत्+शेते=तच्शेते इत्यादि ।

धुड् व्यञ्जनमनन्तःस्थानुनाशिकम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—(अनन्तःस्थानुनाशिकम्) अतःस्थ कहिये य र ल व और अनुनाशिक कहिये ङ ञ ण न

म इन नवअक्षरों के अतिरिक्त (व्यञ्जनम्) व्यञ्जन (धुट्) धुट् कहलाता है।

धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु ॥ ५३ ॥

अर्थः—(चतुर्थेषु) वर्गोंके चौथे अक्षरोंके परे रहते (धुटां) धुट् अक्षरोंको (तृतीयः) तीसरा अक्षर हो जाय जैसेः—तद्+झषयति=तज्झषयति तद्+ढौकते=तड्ढौकते इत्यादि।

अघोषे प्रथमः ॥ ५४ ॥

अर्थ—(अघोषे) अघोष अक्षरके परे रहते धुट् जो है सो (प्रथमः) प्रथम अक्षर होजाय जैसें,—अद्+छेषः=अच्छेषः। तद्+छेतम्=तच्छेतम्। तद्+छलक्षणम्=तच्छ्लक्षणम्। तद्+छादयति=तच्छादयति। तद्+ठकारेण=तट्ठकारेण इत्यादिः।

अन्त्यात्पूर्वोपधा ॥ ५५ ॥

अर्थः—धातु और लिङ्ग यानी शब्दके (अन्त्यात्) अन्तसे (पूर्वोपधा) पूर्ववर्ण जो है सो उपधा संज्ञा-

वालाहै । जैसेः—कुङ् शब्दमें उ की सुगण्में अ की तस्मिन्में इ की उपधा संज्ञा है ।

ङणना ह्रस्वोपधाः स्वरे द्विः ॥ ५६ ॥

अर्थः—(स्वरे) स्वरके परें रहते (ह्रस्वोपधाः) ह्रस्व उपधावाले (ङणनाः) ङ ण न ये तीन अक्षर (द्विः) दो होजाते हैं जैसेः—कुङ्+आस्ते=कुङ्ङास्ते । सुगण्+अत्र=सुगण्णत्र । तस्मिन्+इति=तस्मिन्निति ।

नोऽन्तश्चछयोः शकारमनुस्वारपूर्वम् ॥ ५७ ॥

अर्थः—(चछयोः) च छ के परें रहते (अन्तः नः) पदान्तका नकार (अनुस्वारपूर्वम्) अनुस्वारपूर्वक (शकारम्) शकारको प्राप्त होजाता है. जैसेः—भवान्+चरति=भवांश्चरति । पठन्+छात्रः=पठंश्छात्रः ।

टठयोः षकारम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—(टठयोः) ट ठ के परें रहते पदान्तका नकार जो हैं सो अनुस्वार पूर्वक (षकारम्) षकारको प्राप्त

होजाता है. जैसेः—भवान्+टीकते=भवांष्टीकते । भवान्+ठकारेण=भवांष्ठकारेण ।

तथयोः सकारम् ॥ ५९ ॥

अर्थः—(तथयोः) त थ के परें रहते पदान्तका नकार जो है सो अनुस्वार पूर्वक (सकारम्) सकारको प्राप्त हो जाहै. जैसेः—भवान्+तरति=भवांस्तरति । भवान्+थुड़ति=भवांस्थुड़ति ।

ले लम् ॥ ६० ॥

अर्थः—(ले) ल के परें रहते पदान्तका नकार जो है सो (लम्) अनुनाशिकपूर्वक लकारको प्राप्त होजाय. जैसेंः—भवान्+लिखति=भवाँल्लिखति । भवान्+लुनाति=भवाँल्लुनाति ।

---

(१)इस सूत्रमें "कार" के नलिखने से सानुनाशिककी सूचना होती है अर्थात् इस सूत्रमें (लम्) की जगह (लकारम्) ऐसा पद देदेते तो अनुस्वारकी ही अनुवृत्ति आती, परन्तु आचार्य्यने अनुस्वारकी जगह सानुनाशिक जतानेकी इच्छासे ही "कार" को छोड़कर (लम्) ऐसा पद रक्खा है.

जश्झशकारेषु अकारम् ॥ ६१ ॥

अर्थः—पदान्तका नकार (जश्झशकारेषु) ज झ श के परे रहते (अकारम्) अकारको प्राप्त हो जाय. जैसैः—

भवान्+जयति=भवाञ्जयति । भवान् झषयति भवाञ्झषयति। भवान्+अकारेण=भवाञ्अकारेण । भवान् शेते=भवाञ्शेते ॥

शिन्चौ वा ॥ ६२ ॥

अर्थ—पदान्तका न (शि) शकार के परे रहते (वा) कहीं २ (न्चौ) न् च् को प्राप्त होजाता है और ६३ वें सूत्र के अनुसार न् को ञ् होकर ४८ वें सूत्र से कहीं २ श को छ होजाता है जैसैं,—भवान्+शूरः=भवाञ्च्शूरः=भावाञ्च्छूरः और ६१ वें सूत्र से भवाञ्शूरः इत्यादि ॥

तवर्गश्चटवर्गयोगे चटवर्गौ ॥ ६३ ॥

अर्थ—(तवर्गः) त थ द ध न जे हैं ते (चट वर्ग

योगे) च छ ज झ ञ तथा ट ठ ड ढ ण के योग होनेपर (चटवर्गौ) च छ ज झ ञ और ट ठ ड ढ ण यथा संख्यसे होजाते हैं. जैसैं भवान्च्शूरः=भवाञ्च्शूरः ।

डढणपरस्तु णकारम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—(डढणपरस्तु) ड, अथवा ढ अथवा ण परेवाला पदान्त नकार है सो तो (णकारम्) ण् को प्राप्त होजाय जैसैं; भवान्+डीनः=भवाण्डीनः । भवान्+ढौकते=भवाण्ढौकते । भवान्=णकारेण=भवाण्णकारेण ॥

मोऽनुस्वारं व्यञ्जने ॥ ६५ ॥

अर्थ--(व्यञ्जने) व्यञ्जन के परें रहते (मः) पदान्तका मकार (अनुस्वारं) अनुस्वार को प्राप्त होजाता हैं. जैसे, त्वम् लुनासि=त्वं लुनासि । त्वम् यासि=त्वंयासि ।

वा विरामे ॥ ६६ ॥

अर्थ--पदान्तका मकार (विरामे) विराम के परें रहते (वा) कहीं २ अनुस्वार को प्राप्त होजाय. जैसें, देवानाम्=देवानां । रामाणाम् रामाणां ! देवम्=देवं ।

वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा ॥ ६७ ॥

अर्थ--पदान्त का मकार (वर्गे) वर्ग का कोई अक्षर परें रहै तो (वा) कहीं २ (तद्वर्गपञ्चमं) उसी वर्ग का पांचवां अक्षर होजाता है ॥ जैसै,--

त्वम्+करोषि=त्वङ्करोषि=(६५ वें सूत्रसें) त्वं करोषि ।
त्वम्+चरसि=त्वञ्चरसि=(६५ वें सूत्रसें) त्वं चरसि ।
त्वम्+टीकसे=त्वण्टीकसे=(६५ वें सूत्रसे) त्वं टीकसे।
त्वम्+तरसि=त्वन्तरसि=(६५ वें सूत्रसे) त्वं तरसि ।
त्वम्+पचसि=त्वम्पचसि=(६५ वें सूत्रसे)त्वं पचसि ।

इति चतुर्थ सन्धिः ।

---

(१) परवर्णाभावो विरामः । अर्थ,- आगें वर्ण का न होना उस को विराम कहते हैं ।

अथ विसर्जनीयसन्धिः ।

विसर्जनीयश्चे छे वा शम् ॥ ६८ ॥

अर्थ-(चे छे वा) च और छ के परें रहते (विसर्जनीयः) विसर्ग जो है सो (शम्) श् को प्राप्त होजाय । जैसें,-कः चरति=कश्चरति । कः छादयति=कश्छादयति ॥

टे ठे वा षम् ॥ ६९ ॥

अर्थ-(टे ठे वा) ट और ठ के परें रहते विसर्ग जो है सो (षम्) ष् को प्राप्त होजाता है जैसें,- कः टीकते=कष्टीकते । कः ठकारेण=कष्ठकारेण ॥

ते थे वा सम् ॥ ७० ॥

अर्थ-(ते थे वा) ते और थ के परें रहते विसर्ग (सम्) स् को प्राप्त होजाताहै जैसें,- कः तरति=कस्तरति । कःथुड़ति=कस्थड़ति ॥

कखयोर्जिह्वामूलीयं न वा ॥ ७१ ॥

अर्थ–(कखयोः) क ख के परें रहते बिसर्ग जो है सो (न वा) कहीं २ (जिह्वामूलीयं) जिह्वामूलीय को प्राप्त होजाता है–जैसें,– कः करोति=क ᾽ करोति । कः खनति=क ᾽ खनति ॥

पफयोरुपध्मानीयं न वा ॥ ७२ ॥

अर्थ–(पफयोः) प फ के परें रहते विसर्ग (नवा) कहीं २ (उपध्मानीयं) उपध्मानीय को प्राप्त होजाता है । जैसें.– कः पचति=क पँचति । कः फलति=क फँलाति ॥

शे षे से वा वा पररूपम् ॥ ७३ ॥

अर्थ–(शे षे से वा) श अथवा ष अथवा स के परें रहते विसर्ग (वा) कहीं कहीं (पररूपम्) अगले रूप को प्राप्त होजाता है. जैसें,– कः शेते=कश्शेते । कः षण्डे=कष्षण्डे । कः साधुः=कस्साधुः ॥

अघोषस्थेषु शषसेषु वा लोपम् ॥ ७४ ॥

अर्थः—(अघोषस्थेषु) अघोष हैं परें जिनके ऐसे (शषसेषु) श ष स के परें रहते विसर्ग जो है सो (वा)कहीं२ (लोपम्)लोपको प्राप्त होजाता है। जैसैं,—
कः श्च्योतति=क श्च्योतति(७३ वें सूत्रसे)कश्श्च्योतति। कः ष्ठीवति=कष्ठीवति=(७३ वें सूत्रसे) कष्ष्ठीवति । कः स्तौति=कस्तौति=(७३ वें सूत्रसे) कस्स्तौति।

उमकारयोर्मध्ये ॥ ७५ ॥

अर्थ—(अकारयोर्मध्ये) दो अकारों के बीचमें विसर्ग जो है सो (उम्) उ को प्राप्त होजाता है और फिर २६ वें सूत्रसे ओ होकर यदि पदान्त होयतो ४० वें सूत्रसे अकारका लोप भी होजाताहै जैसै,—
कः अत्र=क उ अत्र=को अत्र=कोऽत्र ।
कः अर्थः=क उ अर्थः=को अर्थः=कोऽर्थः ।

पुनः अत्र में ८२ वें सूत्र से रकार होकर पुनरत्र बनता है

अघोषवतोश्च ॥ ७६ ॥

अर्थः—(अघोषवतोः) अ और घोषवत् अ के बीच का विसर्ग (च) भी उ को प्राप्त होजाता और २ ६ वें सूत्र से फिर ओ होजाता है जैसे,—

कः गच्छति=क उ गच्छति=को गच्छति ।

कः धावति=क उ धावति=को धावति ।

अपरो लोप्योऽन्यस्वरे यं वा ॥ ७७ ॥

अर्थ—(अन्यस्वरे) अकारको छोडकर अन्य स्व रके परे रहते (अपरः) अकारके परे का विसर्ग (है सो (लोप्यः) लोप करना चाहिये (वा) अथ (यं) यकारको प्राप्त होजाता है. और जहां विसर्ग लोप होजाता है वहांपर ८६ वे सूत्रसे फिर सन्धि नहीं होती जैसें,—

कः इह = क इह = क्य् इह = कयिह ।

कः उपरि=क उपरि=कय् उपरि=कयुपरि ।

कः एषः=क एषः=कय् एषः=कयेषः ।

आभोभ्यामेवमेव स्वरे ॥ ७८ ॥

अर्थ—(स्वरे) स्वरके परें रहते (आभोभ्याम्) आकार और भो भगो अघो से परेंका विसर्ग जो है सो (एवमेव) ऐसे ही होय अर्थात् लोप अथवा यकार-को प्राप्त होजाय जैसें,—

देवाः आहुः=देवा आहुः=देवाय् आहुः=देवायाहुः ।

भोः अत्र=भो अत्र=भोय् अत्र=भोयत्र ।

भगोः अत्र=भगो अत्र=भगोय् अत्र=भगोयत्र ।

अघोः अत्र=अघो अत्र=अघोय्=अत्र=अघोयत्र ।

घोषवति लोपम् ॥ ७९ ॥

अर्थ—(घोषवति) घोषवत् अक्षरोंके परें रहते आ

---

१ 'भो' इस शब्दसे अन्य ओकारान्त आमन्त्रण बाचक शब्द भी उपलक्षणसे ग्रहण किये जाते हैं ।

और भो भगो अघो का विसर्ग (लोपम्) लोपको प्राप्त होजाता है-जैसैं,-देवाः गताः देवागता। भो यासि=भोयासि। भगोः व्रज=भगोव्रज। अघोः यज= अघोयज।

नामिपरो रम् ॥ ८० ॥

अर्थः-(नामिपरः) नामि से परें का विसर्ग (रम्) रकारको प्राप्त होजाता है जैसैं,-सुपिः=सुपिर्= सुतुः=सुतुर् ॥

घोषवत्स्वरेषु ॥ ८१ ॥

अर्थः-(घोषवत्स्वरेषु) घोषवत् और स्वरोंके परें रहते नामीसे परेंका विसर्ग र् को प्राप्त होजाता है जैसें,-मुनिःगच्छति=मुनिर्गच्छति। पटुःगच्छति= पटुर्गच्छति। पटुः अत्र=पटुरत्र इत्यादि ॥

रमक्वतिरनामिपरोऽपि ॥ ८२ ॥

अर्थः-घोषवत् और स्वरके परें रहते (रम्रक्व

तिः) रप्रकृतिवाला विसर्ग (अनामिपरःअपि) अनामीसे परेका भी र् को प्राप्त होजाता है जैसे,— पितः याहि=पितर्याहि । पितः अत्र=पितरत्र । पुनः गच्छति=पुनर्गच्छति । पुनः अत्र=पुनरत्र ।

अह्नोऽरेफे ॥ ८३ ॥

अर्थः—रकारको छोड बाकीके घोषवत् और स्वरोंके परें रहते अहन् शब्द के विसर्गकोभी र् होजाय । और र के परें रहने से ७६ वें सूत्रसे उ होकर २६ वें सूत्रसे ओ होजाता है । जैसें,—अहः गणः=अहर्गणः। अहः अत्र=अह रत्र । अहः जयति=अहर्जयति।अहः आयाति=अहरायाति । अहः हसति=अहर्हसति । (७६ वें और २६ वें सूत्रसे) अहः राजते=अहो राजते । अहः रात्रम्=अहोरात्रम् ॥

---

१ रकार से बनेहुये विसर्ग को रप्रकृति विसर्ग कहते हैं।

न स्यादिमे ॥ ८४ ॥

अर्थः--किन्तु (स्यादिमे) सिआदिका भं के परें रहते अहन् शब्दके विसर्गको र् (न) नहि होता. यहां पर ७६ वें सूत्रसे उ होकर २६ वें सूत्रसे ओ होजाता है—जैसैं,—अहःभ्याम्=अहोभ्याम् । अहःभिः अहोभिः । अहः भ्यः=अहोभ्यः ॥

एषसपरो व्यञ्जने लोप्यः ॥ ८५ ॥

अर्थः--(व्यञ्जने) व्यञ्जनके परें रहते (एषसपरः) एष और स के परेंका विसर्ग (लोप्यः) लोप कर देना चाहिये जैसैं.—एषः चरति=एष चरति । सः टीकते=स टीकते । एषः शेते=एष शेते । सः पचति=स पचति ॥

न विसर्जनीयलोपे पुनःसन्धिः ॥ ८६ ॥

अर्थ--विसर्जनीयलोपे) विसर्जनीयके लोप किये

---

*(१) सि औ जस् इत्यादि ७ विभक्तियोंके २१ प्रत्यय हैं जिनमेंसे भ्याम् भिस् भ्यस् इन प्रत्ययोंके परें रहते ॥

बाद (पुनः) फिर वहां (सन्धिः न) सन्धि नहि होती जैसें,—क इह । देवा आहुः । भो अत्र ।

रो रे लोपं स्वरश्च पूर्वो दीर्घः ॥ ८७ ॥

अर्थः—(रे) रकार के परें रहते (रः) र् (लोपम्) लोपको प्राप्त होजाता है (च) और (पूर्वः स्वरः) पहिला स्वर जो है सो (दीर्घः) दीर्घ होजाता है. जैसें,—अग्निः रथेन (८१ वें सूत्रसे) अग्निर् रथेन=अग्नी रथेन । पुनः रात्रिः (८२ वें सूत्रसे) पुनर् रात्रिः=पुना रात्रिः ॥

द्विर्भावं स्वरपरश्छकारः ॥ ८८ ॥

अर्थः—(स्वरपरः) स्वर है परें जिसके ऐसा (छकारः) छ (द्विर्भावं) दो पणे को प्राप्त होजाता है. अपिके अधिकारसे कहीं २ पदान्तके दीर्घसे परेंका छकारभी द्वित्व होजाय फिर ५४ वें सूत्रसे पहिले छकारको च् होजाय जैसें,—

वट+छाया=वट छ्छाया=वटच्छाया ।

कवि+छन्दः=कवि छ्छन्दः=कविच्छन्दः ।

बाला+छादयति=बाला छ्छादयति=बालाच्छादयति।

बेला+छादयति=बेला छ्छादयति=बेलाच्छादयति ।

इति पञ्चमः सन्धिः ।

॥ समाप्तः ॥

